१३

विश्वतोमुखी मंगलदीप : अनेकान्त

अनेकान्त क्या है ? वस्तुतः विचारात्मक अहिंसा ही अनेकान्त है । बौद्धिक अहिंसा ही, अनेकान्त है। और, अनेकान्त-दृष्टि को जिस भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है, वही स्याद्वाद है। अनेकान्त-दृष्टि है, और स्याद्वाद उस दृष्टि की अभिव्यक्ति की पद्धति है। विचार के क्षेत्र में अनेकान्त इतना व्यापक है कि विश्व के समग्र दर्शनों का इसमें समावेश हो जाता है। क्योंकि जितने वचन-व्यवहार हैं, उतने ही नय हैं। सम्यक् नयों का समूह ही वस्तुतः अनेकान्त है। अनेकान्त का अर्थ यह है कि जिसमें किसी एक अन्त का, धर्म-विशेष का, अर्थात् एक पक्ष विशेष का आग्रह न हो। सामान्य भाषा में विचारों के अनाग्रह को ही वास्तव में अनेकान्त कहा जाता है। धर्म, दर्शन और संस्कृति प्रत्येक क्षेत्र में अनेकान्त सिद्धान्त का साम्राज्य है। जीवन और जगत् के जितने भी व्यवहार हैं, वे सब अनेकान्तमूलक ही हैं। अनेकान्त के बिना जीवन-जगत् का व्यवहार नहीं चल सकता। जीवन के प्रत्येक पहलू को समझने के लिए अनेकान्त की आवश्यकता है। जैन-धर्म समभाव की साधना का धर्म है। समभाव, समता, समदृष्टि और साम्यभावना—ये सब जैन-धर्म के मूल तत्त्व हैं। श्रम, शम और सम—ये तीन तत्त्व जैन-विचार के मूल आधार हैं। विचार की समता पर जब भार दिया गया, तब उसमें से अनेकान्त दृष्टि का जन्म हुआ। केवल अपनी दृष्टि को, अपने विचार को ही पूर्ण सत्य मान कर उस पर आग्रह रखना, यह समता के लिए घातक भावना है। साम्य-भावना ही अनेकान्त है। अनेकान्त एक दृष्टि है, एक दृष्टिकोण है, एक भावना है, एक विचार है और है सोचने और समझने की एक निष्पक्ष पद्धति। जब अनेकान्त वाणी का रूप लेता है, भाषा का रूप लेता है, तब वह स्याद्वाद बन जाता है, और जब वह आचार का रूप लेता है, तब वह अहिंसा बन जाता है। अनेकान्त और स्याद्वाद में सबसे बड़ा अन्तर यह है कि अनेकान्त विचार-प्रधान होता है और स्याद्वाद भाषा-प्रधान होता है। अतः दृष्टि जब तक विचार रूप है, तब तक वह अनेकान्त है, दृष्टि जब वाणी का परिधान पहन लेती है, तब वह स्याद्वाद बन जाती है। दृष्टि जब आचार का रूप ले लेती है, तब वह अहिंसा बन जाती है।

जैनाचार्य और अनेकान्त :

इस प्रकार उक्त विश्लेषण पर से यह सिद्ध होता है—अहिंसा और अनेकान्त दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। आचार्य सिद्धसेन दिवाकर, जो विक्रम की पाँचवीं शती के लगभग भारत के एक महान् दार्शनिक थे। उन्होंने अपने 'सन्मति-तर्क' ग्रन्थ में अनेकान्त को विश्व का गुरु कहा है। आचार्य सिद्धसेन दिवाकर का कहना है—"इस अनेकान्त के बिना और तो क्या, लोक-व्यवहार भी चल नहीं सकता। मैं उस अनेकान्त को नमस्कार करता हूँ, जो जन-जन के जीवन को आलोकित करनेवाला गुरु है।" अनेकान्त केवल तर्क का सिद्धान्त ही नहीं है, वह एक अनुभव-मूलक सिद्धान्त है। आचार्य हरिभद्र ने अनेकान्त के सम्बन्ध में कहा है—"कदाग्रही व्यक्ति की, जिस विषय में उसकी अपनी मति होती है, उसी विषय में वह अपनी युक्ति (तर्क) लगाता है। पर, एक निष्पक्ष व्यक्ति की युक्ति सत्याभिमुख ही होती है।" अनेकान्त के व्याख्याकार आचार्यों में सिद्धसेन ने अपने 'सन्मति-तर्क'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थ में अनेकान्त की प्रौढ़-भाषा में तर्कपुष्ट-पद्धति से व्याख्या की है। आचार्य श्री समन्त-भद्र ने 'आप्त-मीमांसा' ग्रन्थ में अनेकान्त की, जो गंभीर और गहन व्याख्या की है, वह अपने ढंग की एक अनूठी है। आचार्य हरिभद्र ने 'अनेकान्तवाद प्रवेश' और 'अनेकान्त-जय-पताका' जैसे मूर्धन्य ग्रन्थों में अनेकान्त का तर्क-पूर्ण प्रतिपादन किया है। आचार्य अकंलकदेव ने अपने 'सिद्धि विनिश्चय' ग्रन्थ में अनेकान्त का, जो उज्ज्वल रूप प्रस्तुत किया है, वह अपने आप में अद्भुत है। उपाध्याय यशोविजयजी ने नव्य-न्याय की शैली में अनेकान्त, स्याद्वाद, सप्तभंगी, नयवाद पर अनेक ग्रन्थ लिखकर स्याद्वाद को सदा के लिए अजेय बना दिया है। इस प्रकार हमारे प्राचीन आचार्यों ने जिस अहिंसा और अनेकान्त को पल्लवित और विकसित किया, वह श्रमण भगवान् महावीर की मूल वाणी में, बीज रूप में पहले से ही सुरक्षित था। उक्त आचार्यों की विशेषता यही है कि उन्होंने अपने-अपने युग में अहिंसा और अनेकान्त पर तथा स्याद्वाद और सप्तभंगी पर होनेवाले आक्षेपों और प्रहारों का प्रभावशाली तर्क-संगत उत्तर दिया। यही उनकी अपनी विशेषता है।

अनेकान्त जीवन का सत्य :

आप और हम सब, अहिंसा और अनेकान्त के गीत तो बहुत गाते हैं, किन्तु क्या कभी हमने यह समझने का प्रयत्न किया है—हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में अहिंसा कितनी है और अनेकान्त कितना है? कोई भी सिद्धान्त पोथी के पन्नों पर कितना ही अधिक विकसित और पल्लवित क्यों न हो गया हो, किन्तु जब तक जीवन की धरती पर उसका उपयोग नहीं किया जाएगा, तब तक उससे कुछ भी लाभ नहीं। जिस प्रकार अमृत का पान किए बिना केवल अमृत के स्वरूप का प्रतिपादन करने और उसके नाम की माला जपने मात्र से जीवन में संजीवनी-शक्ति का संचार नहीं होता, उसी प्रकार अहिंसा और अनेकान्त का नाम रटने से, उसकी विशद् व्याख्या करने मात्र से जीवन में सत्य की स्फूर्ति और यथार्थ का जागरण नहीं आ सकता। वह तभी आएगा, जबकि अहिंसा और अनेकान्त को जीवन की धरती पर उतार कर, जिन्दगी के हर मोर्चे पर उसका उपयोग और प्रयोग किया जाएगा। खेद की बात है—अनेकान्तवादी कहलानेवाले जैन भी अपने-अपने साम्प्रदायिक एकान्त को पकड़ कर बैठ गए हैं। श्वेताम्बर और दिगम्बरों के संघर्ष, स्थानकवासी और तेरापंथियों के झगड़े—इस तथ्य को ही प्रमाणित करते हैं, कि ये लोग केवल अनेकान्तवाद की कोरी बात भर ही करते हैं, किन्तु इनके जीवन में अनेकान्त है नहीं। सिद्धसेन दिवाकर ने और समन्तभद्र ने अपने-अपने युग में जिस अनेकान्तवाद के आधार पर विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायों का समन्वय किया था, आश्चर्य है, उसी परम्परा के अनुयायी अपना समाधान नहीं कर सके। इससे अधिक विडम्बना अनेकान्त की और क्या होगी? श्वेताम्बरों का दावा है कि समग्र सत्य हमारे पास है और इसके विपरीत दिगम्बरों का दावा है कि समस्त तथ्य हमारे ही पास है। परन्तु मैं इसे एकान्तवाद कहता हूँ। एकान्तवाद, फिर भले ही वह अपना हो, या पराया हो, वह कभी अनेकान्त नहीं बन सकता। सम्प्रदाय-वाद और पंथवाद का पोषण करनेवाले व्यक्ति जब अनेकान्त की चर्चा करते हैं, तब मुझे बड़ी हँसी आती है। मैं सोचा करता हूँ कि इन लोगों का अनेकान्तवाद केवल पोथी के पन्नों का अनेकान्तवाद है, वह जीवन का जीवन्त अनेकान्त नहीं है। आज हमें उस अहिंसा और उस अनेकान्त की आवश्यकता है, जो हमारे जीवन के कालुष्य और मालिन्य को दूर करके, हमारे जीवन को उज्ज्वल और पवित्र बना सके, तथा जो हमारे इस वर्तमान जीवन को सरस, सुन्दर और मधुर बना सके एवं समन्वय की भावना हमारे रग-रग में भर सके।

अनेकान्त, जैन-दर्शन का प्राण :

अनेकान्तवाद जैन-दर्शन की आधारशिला है। जन-तत्त्वज्ञान का महल, इसी अनेकान्तवाद के सिद्धान्त की आधारशिला पर अवलम्बित है। वास्तव में अनेकान्तवाद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन-दर्शन का प्राण है। जैन-धर्म में जब भी, जो भी बात कही गई है, वह अनेकान्तवाद की कसौटी पर अच्छी तरह जाँच-परख करके ही कही गई है। दार्शनिक-साहित्य में जैन-दर्शन का दूसरा नाम अनेकान्तवादी-दर्शन भी है।

अनेकान्तवाद का अर्थ है—प्रत्येक वस्तु का भिन्न-भिन्न दृष्टि-बिन्दुओं से विचार करना, परखना, देखना। अनेकान्तवाद का यदि एक ही शब्द में अर्थ समझना चाहें, तो उसे 'अपेक्षावाद' कह सकते हैं। जैन-दर्शन में सर्वथा एक ही दृष्टिकोण से पदार्थ के अवलोकन करने की पद्धति को अपूर्ण एवं अप्रामाणिक समझा जाता है और एक ही वस्तु में विभिन्न धर्मों को विभिन्न दृष्टिकोणों से निरीक्षण करने की पद्धति को पूर्ण एवं प्रामाणिक माना जाता है। यह पद्धति ही अनेकान्तवाद है।

अनेकान्त और स्याद्वाद :

अनेकान्तवाद और स्याद्वाद एक ही सिद्धान्त के दो पहलू हैं, जैसे एक सिक्के के दो बाजू। इसी कारण सर्वसाधारण दोनों वादों को एक ही समझ लेते हैं। परन्तु, ऊपर से एक होते हुए भी दोनों में मूलतः भेद है। अनेकान्तवाद यदि वस्तु-दर्शन की विचार-पद्धति है, तो स्याद्वाद उसकी भाषा-पद्धति। अनेकान्त-दृष्टि को भाषा में उतारना स्याद्वाद है। इसका अर्थ हुआ कि वस्तु-स्वरूप के चिन्तन करने की विशुद्ध और निर्दोष शैली अनेकान्तवाद है, और उस चिन्तन तथा विचार को अर्थात् वस्तुगत अनन्त धर्मों के मूल में स्थित विभिन्न अपेक्षाओं को दूसरों के लिए निरूपण करना, उनका मर्मोद्घाटन करना स्याद्वाद है। स्याद्वाद को 'कथंचित्वाद' भी कहते हैं।

वस्तु अनन्त धर्मात्मक है :

जैन-धर्म की मान्यता है कि प्रत्येक पदार्थ, चाहे वह छोटा-सा रजकण हो, चाहे विराट् हिमालय—वह अनन्त धर्मों का समूह है। धर्म का अर्थ—गुण है, विशेषता है। उदाहरण के लिए आप फल को ले लीजिए। फल में रूप भी है, रस भी है, गंध भी है, स्पर्श भी है, आकार भी है, भूख बुझाने की शक्ति भी है, अनेक रोगों को दूर करने की शक्ति है और अनेक रोगों को पैदा करने की भी शक्ति है। कहाँ तक गिनाएँ? हमारी बुद्धि बहुत सीमित है, अतः हम वस्तु के सब अनन्त धर्मों को बिना अनन्त ज्ञान हुए, नहीं जान सकते। परन्तु स्पष्टतः प्रतीयमान बहुत से धर्मों को तो अपने बुद्धि-बल के अनुसार जान ही सकते हैं।

हाँ तो, पदार्थ को केवल एक पहलू से, केवल एक धर्म से जानने का या कहने का आग्रह मत कीजिए। प्रत्येक पदार्थ को पृथक्-पृथक् पहलुओं से देखिए और कहिए। इसी का नाम अनेकान्तवाद है। अनेकान्तवाद हमारे दृष्टिकोण को विस्तृत करता है, हमारी विचार-धारा को पूर्णता की ओर ले जाता है।

'भी' और 'ही' :

फल के सम्बन्ध में जब हम कहते हैं कि—फल में रूप भी है, रस भी है, गंध भी है, स्पर्श भी है आदि, तब तो हम अनेकान्तवाद और स्याद्वाद का उपयोग करते हैं और फल का यथार्थ निरूपण करते हैं। इसके विपरीत जब हम एकान्त आग्रह में आकर यह कहते हैं कि फल में केवल रूप ही है, रस ही है, गंध ही है, स्पर्श ही है, तब हम मिथ्या एकान्तवाद का प्रयोग करते हैं। 'भी' में दूसरे धर्मों की स्वीकृति का स्वर छिपा हुआ है, जबकि 'ही' में दूसरे धर्मों का स्पष्टतः निषेध है। रूप भी है—इसका यह अर्थ है कि फल में रूप भी है और दूसरे रस आदि धर्म भी हैं। और रूप ही है, इसका यह अर्थ है कि फल में मात्र रूप ही है, रस आदि कुछ नहीं। यह 'भी' और 'ही' का अन्तर ही स्याद्वाद और मिथ्यावाद की भिन्नता को स्पष्ट करता है। 'भी' स्याद्वाद है, तो 'ही' मिथ्यावाद।

एक आदमी बाजार में खड़ा है। एक ओर से एक लड़का आया। उसने कहा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'पिताजी।' दूसरी ओर से एक बूढ़ा आया। उसने कहा—'पुत्र!' तीसरी ओर से एक सम-वयस्क व्यक्ति आया। उसने कहा—'भाई!' चौथी ओर से एक और लड़का आया। उसने कहा—'मास्टरजी!' इसी प्रकार विभिन्न रूपों में उसी आदमी को कोई चाचा कहता है, कोई ताऊ कहता है, कोई मामा कहता है, कोई भानजा भी कहता है। अपने-अपने पक्ष के लिए सब झगड़ते हैं—यह तो पिता ही है, पुत्र ही है, भाई ही है, मास्टर ही है, और चाचा, ताऊ, मामा या भानजा ही है। अब बताइए, निर्णय कैसे हो? उनका यह संघर्ष कैसे मिटे? वास्तव में वह आदमी है क्या? यहाँ पर अनेकान्त मूलक स्याद्वाद को न्यायाधीश बनाना पड़ेगा। स्याद्वाद पहले लड़के से कहता है—हाँ, यह पिता भी है। तुम्हारे लिए तो पिता है, चूंकि तुम इसके पुत्र हो। और अन्य लोगों का तो पिता नहीं है। बूढ़े से कहता है—हाँ, यह पुत्र भी है। तुम्हारी अपनी अपेक्षा से ही यह पुत्र है, सब लोगों की अपेक्षा से तो नहीं। क्या यह सारी दुनिया का पुत्र है? मतलब यह है कि वह आदमी अपने पुत्र की अपेक्षा से पिता है, अपने पिता की अपेक्षा से पुत्र है, अपने भाई की अपेक्षा से भाई है, अपने विद्यार्थी की अपेक्षा से मास्टर है। इसी प्रकार अपनी-अपनी अपेक्षा से चाचा, ताऊ, मामा, भानजा, पति, मित्र सब है। एक ही आदमी में अनेक धर्म हैं, परन्तु भिन्न-भिन्न अपेक्षा से। यह नहीं कि उसी पुत्र की अपेक्षा पिता, उसी की अपेक्षा पुत्र, उसी की अपेक्षा भाइ, मास्टर, चाचा, ताऊ, मामा, और भानजा हो। ऐसा नहीं हो सकता। यह पदार्थ-विज्ञान के नियमों के विरुद्ध है।

स्याद्वाद को समझने के लिए इन उदाहरणों पर और ध्यान दीजिए—एक आदमी काफी ऊँचा है, इसलिए कहता हूँ कि मैं बड़ा है। हम पूछते हैं—'क्या आप पहाड़ से भी बड़े हैं?' वह झट कहता है—'नहीं साहब, पहाड़ से तो मैं छोटा हूँ।' मैं तो अपने साथ के इन नाटे आदमियों की अपेक्षा से कह रहा था कि 'मैं बड़ा हूँ।' अब एक दूसरा आदमी है। वह अपने साथियों से नाटा है, इसलिए कहता है कि—'मैं छोटा हूँ।' हम पूछते ह—'क्या आप चींटी से भी छोटे हैं?' वह झट उत्तर देता है—'नहीं, चींटी से तो मैं बहुत बड़ा हूँ।' मैं तो अपने इन कद्दावर साथियों की अपेक्षा से कह रहा था कि 'मैं छोटा हूँ।'

इस से अनेकान्त की मूल भावना स्पष्ट हो जाती है कि हर वस्तु बड़ी भी है और छोटी भी है। वह अपने से बड़ी चीज की अपेक्षा से छोटी है, तो छोटी चीजों की अपेक्षा बड़ी है। इसी प्रकार प्रत्येक वस्तु के विभिन्न पहलू होते ह और उन्हें समझने के लिए अपेक्षा-वाद का सिद्धान्त वस्तु के एक केन्द्र में ही निर्णायक होता है। दर्शन की भाषा में इसी बहु आयामी विचार को अनेकान्तवाद कहते हैं और उक्त विचार के प्रतिपादन को स्याद्वाद।

हाथी का अनेकान्तिक-दर्शन :

अनेकान्तवाद को समझने के लिए प्राचीन आचार्यों ने हाथी का उदाहरण दिया है। एक गाँव में जन्म के अन्धे छह मित्र रहते थे। संयोग से एक दिन वहाँ एक हाथी आ गया। गाँववालों ने कभी हाथी देखा नहीं था, धूम मच गई। अन्धों ने हाथी का आना सुना, तो वे भी देखने दौड़ पड़े। अन्धे तो थे ही, देखते क्या? हर एक ने हाथ से टटोलना शुरू किया। किसी ने पूंछ पकड़ी, तो किसी ने सूंड़, किसी ने कान पकड़ा, तो किसी ने दाँत, किसी ने पैर पकड़ा, तो किसी ने पेट। एक-एक अंग को पकड़ कर हर एक ने समझ लिया कि मैंने हाथी देख लिया है। इसके बाद जब वे अपने स्थान पर आए, तो हाथी के सम्बन्ध में चर्चा छिड़ी।

प्रथम पूंछ पकड़नेवाले ने कहा—"भाई, हाथी तो मैंने देख लिया, बिल्कुल मोटे रस्से-जैसा था।"

सूंड़ पकड़नेवाले दूसरे अन्धे ने कहा—"झूठ, बिल्कुल झूठ! हाथी कहीं रस्से-जैसा होता है। अरे, हाथी तो मूसल जैसा था।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीसरा कान पकड़नेवाला अन्धा बोला—"आँखें काम नहीं देतीं तो क्या हुआ, हाथ तो धोखा नहीं दे सकते। मैंने उसे टटोलकर देखा था, वह ठीक छाज (सूप) जैसा था।"

चौथे दाँत पकड़नेवाले सूरदास बोले—"अरे! तुम सब झूठी गप्पें मारते हो! हाथी तो कुश यानी कुदाल-जैसा था।"

पाँचवें पैर पकड़नेवाले महाशय ने कहा—"अरे! कुछ प्रभु का भी भय रखो। नाहक क्यों झूठ बोलते हो? हाथी तो खम्भे जैसा था। मैंने खूब टटोल-टटोल कर देखा है।"

छठे पेट पकड़नेवाले सूरदास गरज उठे—"अरे! क्यों बकवास करते हो? पहले पाप किए तो अन्धे हुए, अब व्यर्थ का झूठ बोल कर क्यों उन पापों की जड़ों में पानी डालते हो? हाथी तो भाई मैं देखकर आया हूँ। वह अनाज भरने की एक बड़ी कोठी-जैसा है।"

अब क्या था, आपस में वाग्युद्ध ठन गया। सब एक-दूसरे की भर्त्सना करने लगे और लगे परस्पर गाली-गलौज करने।

सौभाग्य से इसी बीच वहाँ आँखोंवाला एक सज्जन व्यक्ति आ गया। अन्धों की तू-तू, मैं-मैं सुनकर उसे हँसी आ गई। सज्जन था न, अतः दूसरे ही क्षण उसका मुख-मण्डल गम्भीर हो गया। उसने सोचा—"भूल हो जाना अपराध नहीं है, किन्तु किसी की भूल पर हँसना तो घोर अपराध है।" उसका हृदय करुणार्द्र हो गया। उसने कहा—"बन्धुओं, क्यों झगड़ते हो? जरा मेरी भी बात सुनो। तुम सब सच्चे भी हो, और झूठे भी। तुम में से किसी ने भी हाथी को पूरा नहीं देखा है। एक-एक अवयव को लेकर हाथी की पूर्णता का बखान कर रहे हो। कोई किसी को झूठा मत कहो, एक-दूसरे के दृष्टिकोण को समझने का प्रयत्न करो। हाथी रस्से-जैसा भी है, पूंछ की दृष्टि से। हाथी मूसल-जैसा भी है, सूंड़ की अपेक्षा से। हाथी छाज-जैसा भी है, कान की ओर से। हाथी कुदाल-जैसा भी है, दाँतों के लिहाज से। हाथी खम्भे-जैसा भी है, पैरों की अपेक्षा से। हाथी अनाज की कोठी-जैसा भी है, पेट की दृष्टि से।" इस प्रकार समझा-बुझाकर उस सज्जन ने एकान्त की आग में अनेकान्त का पानी डाला। अन्धों को अपनी भूल समझ में आई। और, सब शान्त होकर कहने लगे—"हाँ, भाई! तुमने ठीक समझाया। सब अंगों को मिलाने से ही हाथी बनता है, एक-एक अलग-अलग अंग से नहीं!"

वस्तुतः अंधों ने हाथी के एक-एक अंश को देखा और उसी पर हाथी की समग्रता का हठ करने लग गए। आँख वाले सज्जन ने हाथी के विभिन्न अंशों का समन्वय कर, जब उन्हें हाथी के सही रूप को समझाया, तब कहीं उनका विग्रह समाप्त हो पाया।

संसार में जितने भी एकान्तवादी आग्रही सम्प्रदाय हैं, वे पदार्थ के एक-एक अंश अर्थात् एक-एक धर्म को ही पूरा पदार्थ समझते हैं। इसीलिए दूसरे धर्म वालों से लड़ते-झगड़ते हैं। परन्तु, वास्तव में वह पदार्थ नहीं, पदार्थ का एक अंश-मात्र है। स्याद्वाद आँखों वाला दर्शन है। अतः वह इन एकान्तवादी अन्धे दर्शनों को समझाता है कि तुम्हारी मान्यता किसी एक दृष्टि से ही ठीक हो सकती है, सब दृष्टि से नहीं। अपने एक अंश को सर्वथा सब अपेक्षा से सत्य, और दूसरे अंशों को सर्वथा असत्य कहना, बिल्कुल अनुचित है। स्याद्वाद इस प्रकार एकान्तवादी दर्शनों की भूल बताकर पदार्थ के सत्य स्वरूप को आगे रखता है और प्रत्येक सम्प्रदाय को किसी एक अपेक्षा से ठीक बतलाने के कारण साम्प्रदायिक कलह को शान्त करने की अद्भुत क्षमता रखता है। केवल साम्प्रदायिक कलह को ही नहीं, यदि स्याद्वाद का जीवन के हर क्षेत्र में प्रयोग किया जाए, तो क्या परिवार, क्या समाज, और क्या राष्ट्र, सभी में प्रेम एवं सद्भावना के सुखद वातावरण का निर्माण हो सकता है। कलह और संघर्ष का बीज एक-दूसरे के दृष्टिकोण को न समझने में ही है। स्याद्वाद दूसरे के दृष्टिकोण को समझने में सहायक होता है।

यहाँ तक स्याद्वाद को समझने के लिए स्थूल लौकिक उदाहरण ही काम में लाए गए हैं। अब दार्शनिक उदाहरणों का मर्म भी समझ लेना चाहिए। यह विषय जरा गम्भीर है, अतः यहाँ सूक्ष्म निरीक्षण-पद्धति से काम लेना अधिक अच्छा होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नित्य और अनित्य :

जैन-धर्म कहता है कि प्रत्यक पदाथ नित्य भी है और अनित्य भी है। साधारण लोग इस बात पर घपले में पड़ जाते हैं कि जो नित्य है, वह अनित्य कैसे हो सकता है ? और जो अनित्य है, वह नित्य कैसे हो सकता है ? परन्तु जैन-धर्म अनेकान्तवाद के द्वारा सहज ही इस समस्या को सुलझा देता है।

कल्पना कीजिए—एक घड़ा है। हम देखते हैं कि जिस मिट्टी से घड़ा बना है, उसी से सिकोरा, सुराही आदि और भी कई प्रकार के बर्तन बनते हैं। यदि उस घड़े को तोड़ कर हम उसी की मिट्टी से बनाया गया कोई दूसरा बर्तन किसी को दिखलाएँ, तो वह कदापि उसको घड़ा नहीं कहेगा। उसी घड़े की मिट्टी के होते हुए भी उसको घड़ा न कहने का कारण क्या है ? कारण और कुछ नहीं, यही है कि अब उसका आकार घड़े-जैसा नहीं है।

इससे यह सिद्ध हो जाता है कि घड़ा स्वयं कोई स्वतंत्र वस्तु नहीं है, बल्कि मिट्टी का एक आकार-विशेष है। परन्तु, वह आकार-विशेष मिट्टी से सर्वथा भिन्न नहीं है, उसी का एक रूप है। क्योंकि भिन्न-भिन्न आकारों में परिवर्तित हुई मिट्टी ही जब घड़ा, सिकोरा, सुराही आदि भिन्न-भिन्न नामों से सम्बोधित होती है, तो इस स्थिति में विभिन्न आकार मिट्टी से सर्वथा भिन्न कैसे हो सकते हैं ? इससे स्पष्ट हो जाता है कि घड़े का आकार और मिट्टी दोनों ही घड़े के अपने निज स्वरूप हैं।

अब देखना है कि इन दोनों स्वरूपों में विनाशी स्वरूप कौन-सा है और ध्रुव कौन-सा है ? यह प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है कि घड़े का वर्तमान में दिखने वाला आकार-स्वरूप विनाशी है। क्योंकि वह बनता और बिगड़ता है। वह पहले नहीं था, बाद में भी नहीं रहेगा। जैन-दर्शन में इसे पर्याय कहते हैं। और, घड़े का जो दूसरा मूल-स्वरूप मिट्टी है, वह अविनाशी है, क्योंकि उसका कभी नाश नहीं होता। घड़े के बनने से पहले भी मिट्टी मौजूद थी, घड़े के बनने पर भी वह मौजूद है, और घड़े के नष्ट हो जाने पर भी वह मौजूद रहेगी। मिट्टी अपने आप में पुद्गल-स्वरूपेण स्थायी तत्त्व है, उसे कुछ भी बनना-बिगड़ना नहीं है। जैन-दर्शन में इसे द्रव्य कहते हैं।

इस विवेचन से अब यह स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है कि घड़े का एक स्वरूप विनाशी है और दूसरा अविनाशी। एक जन्म लेता है और नष्ट हो जाता है, दूसरा सदा-सर्वदा बना रहता है, नित्य रहता है। अतएव अब हम अनेकान्तवाद की दृष्टि से यों कह सकते हैं कि घड़ा अपने आकार की दृष्टि से—विनाशी रूप से अनित्य है। और, अपने मूल मिट्टी की दृष्टि से—अविनाशी रूप से नित्य है।[1] जैन-दर्शन की भाषा में कहें, तो यों कह सकते हैं कि घड़ा अपनी पर्याय की दृष्टि से अनित्य है और द्रव्य की दृष्टि से नित्य है। इस प्रकार एक ही वस्तु में परस्पर विरोधी जैसे परिलक्षित होने वाले नित्यता और अनित्यता-रूप धर्मों को सिद्ध करनेवाला सिद्धान्त ही अनेकान्तवाद है।

त्रिपदी :

जगत् के सब पदार्थ उत्पत्ति, विनाश और स्थिति—इन तीन धर्मों से युक्त हैं। जैन-दर्शन में इनके लिए क्रमशः उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य शब्दों का प्रयोग किया गया है। इसे त्रिपदी भी कहा जाता है। आप कहेंगे—एक वस्तु में परस्पर विरोधी धर्मों का समन्वय कैसे हो सकता है ? इसे समझने के लिए एक उदाहरण लीजिए। एक सुनार के पास सोने का कंगन है। वह उसे तोड़कर, गलाकर हार बना लेता है। इससे यह स्पष्ट हो गया कि कंगन का नाश होकर हार की उत्पत्ति हो गई। परन्तु इससे आप यह नहीं कह सकते कि हार बिल्कुल ही नया बन गया। क्योंकि कंगन और हार में जो सोने के रूप में पुद्गल

---

१. मिट्टी का उदाहरण मात्र समझने के लिए स्थूल रूप से दिया गया है। वस्तुतः मिट्टी भी नित्य नहीं है। नित्य तो वह पुद्गल परमाणुपुञ्ज है, जिससे मिट्टी का निर्माण हुआ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परमाणु-स्वरूप मूलतत्त्व है, वह तो ज्यों का त्यों अपनी उसी स्थिति में विद्यमान है। विनाश और उत्पत्ति केवल आकार की ही हुई है। पुराने आकार का नाश हुआ है और नये आकार की उत्पत्ति हुई है। इस उदाहरण के द्वारा सोने में कंगन के आकार का नाश, हार के आकार की उत्पत्ति, और सोने की तदवत्-स्थिति—ये तीनों धर्म भली-भाँति सिद्ध हो जाते हैं।

इसी प्रकार प्रत्येक वस्तु में उत्पत्ति, विनाश और स्थिति—ये तीनों गुण स्वभावतया समन्वित रहते हैं। कोई भी वस्तु जब नष्ट हो जाती है, तो इससे यह न समझना चाहिए कि उसके मूलतत्त्व ही नष्ट हो गए। उत्पत्ति और विनाश तो उसके स्थूल-रूप के होते हैं। स्थूल वस्तु के नष्ट हो जाने पर भी उसके सूक्ष्म परमाणु, तो सदा स्थित ही रहते हैं। वे सूक्ष्म परमाणु, दूसरी वस्तु के साथ मिलकर नवीन रूपों का निर्माण करते हैं। वैशाख और ज्येष्ठ के महीने में सूर्य की किरणों से जब तालाब आदि का पानी सूख जाता है, तब यह समझना भूल है कि पानी का सर्वथा नाश हो गया है, उसका अस्तित्व पूर्णतया नष्ट हो गया है। पानी चाहे अब भाप या गैस आदि किसी भी रूप में क्यों न हो, वह अन्ततः परमाणु-रूप में विद्यमान है। हो सकता है, उसका वह सूक्ष्म रूप दिखाई न दे, पर यह कदापि सम्भव नहीं कि उसकी सत्ता ही नष्ट हो जाए। अतएव यह सिद्धान्त अटल है कि न तो कोई वस्तु मूल रूप से अपना अस्तित्व खोकर सर्वथा नष्ट ही होती है और न शून्य-रूप अभाव से भावस्वरूप होकर नवीन रूप में सर्वथा उत्पन्न ही होती है। आधुनिक पदार्थ विज्ञान भी इसी सिद्धान्त का समर्थन करता है। वह कहता है—"प्रत्येक वस्तु मूल प्रकृति के रूप में ध्रुव है, स्थिर है, और उससे उत्पन्न होनेवाले अपरापर दृश्यमान पदार्थ उसके भिन्न-भिन्न रूपान्तर मात्र हैं।"

नित्यानित्यवाद की मूल दृष्टि :

उपर्युक्त उत्पत्ति, विनाश और स्थिति—इन तीन गुणों में जो मूल वस्तु सदा स्थित रहती है, उसे जैन-दर्शन द्रव्य कहता है, और जो उत्पन्न एवं विनष्ट होती रहती है, उसे पर्याय कहता है। कंगन से हार बनानेवाले उदाहरण में—सोना द्रव्य है और कंगन तथा हार पर्याय है। द्रव्य की अपेक्षा से प्रत्येक वस्तु नित्य है और पर्याय की अपेक्षा से अनित्य है। इस प्रकार प्रत्येक पदार्थ को न एकान्त नित्य और न एकान्त अनित्य माना जा सकता है, अपितु नित्यानित्य उभय रूप से ही मानना युक्तियुक्त है और यही अनेकान्तवाद है।

अस्ति-नास्तिवाद :

अनेकान्त सिद्धान्त सत् और असत् के सम्बन्ध में भी उभयस्पर्शी दृष्टि रखता है। कितने ही सम्प्रदायों में प्रायः ऐसा कहा जाता है—'वस्तु सर्वथा सत् है।' इसके विपरीत दूसरे सम्प्रदाय कहते हैं—'वस्तु सर्वथा असत् है।' और, इस पर दोनों ओर से संघर्ष होता है, वाग्युद्ध होता है। अनेकान्तवाद ही वस्तुतः इस संघर्ष का सही समाधान कर सकता है।

अनेकान्तवाद कहता है कि प्रत्येक वस्तु सत् भी है और असत् भी। अर्थात् प्रत्येक पदार्थ 'है' भी और 'नहीं' भी। अपने निजस्वरूप से वह है और दूसरे पर-स्वरूप से वह नहीं है। अपने पुत्र की अपेक्षा से पिता पितारूप से सत् है, और पर-पुत्र की अपेक्षा से पिता पितारूप से असत् है। यदि वह पर-पुत्र की अपेक्षा से भी पिता ही है, तो सारे संसार का पिता हो जाएगा, और यह कदापि सम्भव नहीं है।

कल्पना कीजिए—सौ घड़े रखे हैं। घड़े की दृष्टि से तो वे सब घड़े हैं, इसलिए सत् हैं। परन्तु घट से भिन्न जितने भी पट आदि अघट हैं, उनकी दृष्टि से असत् हैं। प्रत्येक घड़ा भी अपने गुण, धर्म और स्वरूप से ही सत् है, किन्तु अन्य घड़ों के गुण, धर्म और स्वरूप से सत् नहीं है। घड़ों में भी आपस में भिन्नता है न? एक मनुष्य अकस्मात् किसी दूसरे के घड़े को उठा लेता है, और फिर पहचानने पर यह कह कर कि यह मेरा नहीं है, वापस रख देता है। इस दशा में घड़े में असत् नहीं, तो और क्या है? 'मेरा नहीं है'—इसमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेरा के आगे जो 'नहीं' शब्द है, वही असत् का अर्थात् नास्तित्व का सूचक है। प्रत्येक वस्तु का अस्तित्व अपनी सीमा में है, सीमा से बाहर नहीं। अपना स्वरूप अपनी सीमा है, और दूसरों का स्वरूप अपनी सीमा से बाहर है, अतः पर-सीमा है। यदि विश्व की प्रत्येक वस्तु, अपने से भिन्न हर एक वस्तु के रूप में भी सत् हो जाए, तो फिर संसार में कोई व्यवस्था ही न रहे। दूध, दूध रूप में भी सत् हो, दही के रूप में भी सत् हो, छाछ के रूप में भी सत् हो, पानी के रूप में भी सत् हो, तब तो दूध के बदले में दही, छाछ या पानी हर कोई ले-दे सकता है। किन्तु, याद रखिए—दूध, दूध के रूप में सत् है, दही आदि के रूप में वह सर्वथा असत् है। क्योंकि स्व-स्वरूप सत् है, पर-रूप असत्।

वस्तुतः स्याद्वाद सत्य-ज्ञान की कुञ्जी है। आज संसार में जो सब ओर धार्मिक, सामाजिक, राष्ट्रिय आदि वैर-विरोध का बोलबाला है, वह स्याद्वाद के द्वारा दूर हो सकता है। दार्शनिक-क्षेत्र में स्याद्वाद वह सम्राट् है, जिसके सामने आते ही कलह, ईर्ष्या, अनुदारता, साम्प्रदायिकता और संकीर्णता आदि विग्रहात्मक-दोष तत्काल पलायन कर जाते हैं। जब कभी विश्व में शान्ति का सर्वतोभद्र सर्वोदय राज्य स्थापित हो पाएगा, तो वह स्याद्वाद के द्वारा ही हो पाएगा—यह बात अटल सत्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org